P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-III, ISSUE-III, February-2015
E: ISSN No. 2349-9435
Periodic Research

मौर्ययुगीन भारत में लौह तकनीक के बदलते सामाजिक आयाम

विजेन्द्र राय
इतिहास विभाग,
आर.आर.एम. डिग्री कालेज,
तुलापुर, सिकन्दरा, इलाहाबाद

सारांश

अद्यतन नवीन शोधों के आलोक में भारत में लोहे की प्राचीनता आमतौर पर 1500 ईसा पूर्व से भी पूर्व प्रस्तावित है। किन्तु लौह तकनीक का समाज में अपेक्षाकृत व्यापक प्रभाव मौर्य काल में ही दृष्टिगत होता है। आलोच्य काल में लौह तकनीक भारतीय जीवन शैली के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत अध्ययन उन सामाजिक परिवर्तनों को आवृत्त करता है जो लौह तकनीक के विकास के साथ–साथ आसन्न हुईं। वृहद पैमाने पर लौह खदानों के दोहन ने एक तरफ समाज में इस धातु की बढ़ती हुई माँग को पूरा किया, तो दूसरी तरफ इसके तकनीकी ज्ञान में निरन्तर परिष्कार भी हुआ। इनके सामाजिक निहितार्थ भी हैं जिनकी पुष्टि साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है।

मुख्य शब्दः लौह तकनीक, मौर्यकाल, पुरातत्व, सामाजिक निहितार्थ, भौतिक संस्कृति।

प्रस्तावना

प्रारम्भिक भारत में लोहे के तकनीकी एवं सामाजिक दोनों ही पक्षों के अध्ययन की अपनी सीमाएं हैं। इस संदर्भ में उपलब्ध अधिकांश विद्वतापूर्ण शोधालेख अपनी प्रकृति में एकांगी दृष्टिकोण वाले हैं। एक मुख्य तकनीकी घटक के रूप में समाज को प्रायः नजरंदाज कर दिया जाता है। यदि तकनीक की उत्पत्ति एवं विकास की प्रक्रिया को समकालीन सामाजिक प्रक्रिया से अलग कर अध्ययन किया जाय तो इसके निष्कर्ष समीचीन नहीं होंगे। अतः तकनीक का अध्ययन तत्कालीन सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखकर होना चाहिए। तकनीकी नवोन्मेष एक सामाजिक उत्पाद है। यह व्यावहारिक तभी हो सकता है जब समाज इस हेतु तत्पर हो। सामाजिक तत्परता उत्पादन की मौजूदा विधाओं, सामाजिक संरचना को संबलित करने वाली शक्तियों, पारिस्थितिकीय बाध्यताओं आदि पर निर्भर करती है। विभिन्न ऐतिहासिक कालों में तकनीक की विभिन्न भूमिका को इन घटकों के मध्य संतुलन में आसन्न परिवर्तन के द्वारा समझा जा सकता है। अस्तु, इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन मौर्ययुगीन भारत में लौह तकनीक के सामाजिक आयामों को उजागर करने का प्रयास करता है।

विषय वस्तु

गंगा घाटी के बदलते पुरातात्विक आयामों के बीच भारत में लौह कर्म की प्राचीनता 1500 ईसा पूर्व से भी पूर्व प्रस्तावित है।[1] मंदगति से परिवर्तित होने वाले भारतीय समाज[2] में लौह तकनीक ने अपने परिष्करण एवं प्रसरण के अनुक्रम में एक दीर्घकालिक यात्रा का अनुसरण किया। उत्पत्ति की स्वदेशी पृष्ठभूमि[3] होने के बावजूद भारतीय समाज में इसकी व्यापक अनुगूँज चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व में ही सुनाई पड़ती है।[4] वास्तव में भारतीय ऐतिहासिक परिदृश्य में मौर्यों के पदार्पण के साथ ही प्रभावी आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं ने मूर्त्त स्वरूप ग्रहण करना शुरू किया। मौर्य काल में लौह तकनीक ने स्पष्ट रूप से अपनी तकनीकी कुशलता एवं वृहद प्रसारण के सन्दर्भ में नयी ऊँचाईयों को प्राप्त किया। एन. बी. पी. डब्ल्यू. से सम्बन्धित पुरास्थलों के उत्खनन से ज्ञात होता है कि बहुत से क्षेत्रों में मौर्य काल के पूर्व लौह युग का प्रारम्भ हो चुका था, किन्तु विकास के चारित्रिक लक्षण मौर्य काल में ही स्पष्टतया दृष्टिगत होते हैं।[5] हस्तिनापुर[6] और श्रावस्ती[7] दोनों ही पुरास्थलों से पाप्त इस काल की पुरासामग्रियाँ प्राक् एन. बी. पी. डब्ल्यू. कालीन वस्तुओं की तुलना में उन्नत अवस्था में हैं। यही बात कौशाम्बी के संबंध में भी कही जाती

है।[8] इस पुरास्थल से प्राप्त 11 प्रकार के लौह वाणाग्र, 5 प्रकार के भाले और बरछे प्रतिवेदित हैं जिनमें से 8 प्रकार के पूर्ववर्ती वाणाग्र और सभी प्रकार के भाले इसी काल से संदर्भित हैं।[9] इस प्रतिदर्श की पुनरावृत्ति अन्य बहुसंख्य पुरास्थलों पर भी दिखाई पड़ता हैं।[10] ऐसे पुरास्थल जहाँ पर भी मौर्य काल के पूर्ववर्ती सांस्कृतिक कालों का उद्घाटन हुआ है वहाँ लोहा चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में ही परिलक्षित होता है, उदाहरणार्थ– रोपड़, सोनपुर एवं सोहगौरा।[11] पुरास्थलों का तृतीय समूह जहाँ पर एन. बी. पी. डब्ल्यू. के पूर्व कोई सांस्कृतिक जमाव नहीं है, वहाँ से प्राप्त लौह उपकरण अपने गढ़न, गठन व प्रकार एवं प्रसरण दृष्टि से समुन्नत हैं। तकनीकी विस्तार के इस स्वरूप का स्पष्ट निदर्शन तक्षशिला के उत्खनन से होता है।[12] वास्तव में मौर्य काल तक आते–आते पुरास्थलों से बड़ी संख्या में लौह सामग्रियाँ प्राप्त होने लगती हैं। यह इस अवधारण को संबलित करता है कि प्राचीन भारत में लौहयुग तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में प्रायः अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। शिशुपालगढ़, नासिक, मध्य भारत व महराष्ट्र के बहुसंख्य पुरास्थलों से पहली बार लौह उपकरण इसी कालखण्ड से प्रतिवेदित हैं,[13] कुछ के अतिरिक्त प्रायः सभी उत्खनित पुरास्थलों पर प्राप्त लौह उपकरणों की बहुतायत है। दक्षिण भारत विशेषकर कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश में भी लोहे से संबंधित पुरास्थलों पर चतुर्थ–तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में इनकी संख्या में अचानक वृद्धि दिखाई पड़ती है। इस संदर्भ में यह प्रस्तावित किया जाता है कि इस विकास का उत्तर भारत में हुए लौह तकनीक के विकास से कोई संबंध नहीं है।[14] यह ठीक है कि दोनों के मध्य कोई सीधा संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता, किन्तु अमरावती से मौर्य कालीन कुछ विशिष्ट पुरावशेषों की प्राप्ति विचारणीय है।[15] इस क्षेत्र में अचानक लौह–कर्म के प्रस्फुटन को उत्तर एन. बी. पी. डब्ल्यू. संस्कृति सम्बन्धी विकसित तत्वों के बलात् प्रवेश के पद में व्याख्यायित किया जा सकता है। किन्तु हमारे पास पर्याप्त यथेष्ट पुरातात्विक साक्ष्य नहीं हैं जिससे इस तथ्य की पुष्टि की जा सके कि मौर्यों ने इस क्षेत्र की संस्कृति को प्रभावित किया था।

लौह खदानों के अपेक्षाकृत अधिक दोहन ने एक तरफ समाज में लोहे की बढ़ती माँग को पूरा किया, तो दूसरी तरफ लौह प्रयोग के विस्तार में सहायता भी प्रदान की। इस संदर्भ में साहित्यिक साक्ष्य बहुत ही स्पष्ट हैं।[16] मौर्य राज्य का खदानों तथा खनिज उत्पादों के व्यापार पर एकाधिकार था। खनिकर्म के महत्व को समझते हुए ही कौटिल्य ने कई अधिकारी– अकाराध्यक्ष (खानों का प्रमुख अधिकारी), खान्याध्यक्ष (खनिकर्म प्रमुख), लक्षणाध्यक्ष, लोहाध्यक्ष (लौहकर्म प्रमुख) नियुक्त किये थे। तथापि, पुरातात्विक साक्ष्य स्वर्ण, रजत एवं ताम्र से संबंधित खनिकर्म को ही प्रमाणित करते हैं।[17] दक्षिण बिहार की लौह पट्टिका में प्रसरित लोहे के कार्य से निकली राख लौह कर्म का पर्याप्त संकेत देती हैं।[18] झारखण्ड प्रांत के राँची[19] के निकट सरदकेल के प्रथम सांस्कृतिक चरण से प्राप्त बड़ी संख्या में लकड़ी को कोयले, लोहे की राख तथा बालू से भरे गर्त इसी तथ्य को पुष्टि करते हैं। उत्खननकर्त्ता ने इसे लौहकर्म से संबंधित भट्ठी के रूप में चिन्हित किया है।[20] कदाचित् यह इस काल का हालमार्क प्रतीत होता है। कौटिल्य धातुओं और संबन्धित खनिकर्म को इतना महत्व देता है कि इसे समस्त शक्ति का स्रोत कहता है।[21] आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस अनुक्रम में राज्य का लोहे के संबंध में इस प्रकार की अभिरूचि और लोहे की समाज में बढ़ती माँग के फलस्वरूप इसकी तकनीक में गुणात्मक परिष्कार हुआ। परिमाण एवं गुणवत्ता दोनों ही दृष्टियों से लौह सामग्री को गलाने और आवश्यकतानुरूप उपकरणों को निर्मित करने के अपेक्षाकृत अधिक अच्छे प्रमाण मिलते हैं। धतवा का उत्खनन इस प्रकार के विकास का द्योतन करता है। यहाँ के धातुकर्मी 99.76% तक शुद्ध लोहा प्राप्त करने में सफल थे। वे गढ़ने और जोड़ने की दोहरी प्रक्रिया द्वारा कुदाल जैसे मजबूत उपकरणों के निर्माण की तकनीक भी प्रयोग में लाने लगे थे।[22] लोहे को गलाना और गलाकर आवश्यकतानुरूप उपकरणों के निर्माण का सबसे अच्छा उदाहरण/साक्ष्य उज्जैन से प्राप्त हुआ है, जहाँ कैल्शियम यौगिक के रूप में चूने का प्रचुर मात्रा में उपयोग दिखाई पड़ता है। लौह कर्म की इस विकसित अवस्था की पृष्ठभूमि में तकनीक के क्रमिक विकास की एक लबी परम्परा रही है।[23]

चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व के मध्यवर्ती चरण के पश्चात् लौह शिल्प तकनीक का सामाजिक सरोकार दो रूपों में दिखाई पड़ता है। प्रथमतः समाज पर इसके पूर्ण प्रभाव का प्रकटीकरण और द्वितीयतः तकनीकी विस्तार के अनुक्रम में इस ओर लोगों का अधिकाधिक झुकाव। मौर्य साम्राज्य का उदय इस काल के भौतिक वातावरण की सबसे अच्छी अभिव्यक्ति है। वास्तव में उत्तर वैदिक काल में ही सामाजार्थिक निकायों में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था और इस परिवर्तन को पूर्णता मौर्य काल में प्राप्त हुई जब अर्थतंत्र चारागाही से आगे बढ़कर पूर्ण विकसित कृषिपरक आर्थिक तंत्र में प्रतिष्ठित हुआ। कृषिपरक आर्थिक तंत्र का विकास तभी संभव था जब कृषि क्षेत्र में लौह उपकरणों का प्रयोग बढ़ता और योजनाबद्ध तरीके से जंगलों की सफाई कर उसे कृषि योग्य भूमि के अन्तर्गत लाया जाता। कृषि से अतिरिक्त उत्पादन के प्रयास के फलस्वरूप गंगा घाटी के बाहर भी विशेषकर प्रायद्वीपीय भागों एवं सिन्धु के उपजाऊ क्षेत्रों में कृषि उत्पादन के नये केन्द्र विकसित हुए। बढ़ी हुई कृषि उपज और शक्ति आधारित सत्ता पर अधिकार के फलस्वरूप अब मौर्य राज्य उत्पादन आधिक्य का लाभ सदियों तक उठाने की बेहतर स्थिति में था। इससे इस तथ्य का भी पता चलता है कि मौर्य राज्य किस प्रकार अपनी एक विशाल सेना और वृहद प्रशासन तंत्र को बनाये रखा था। वास्तव में मौर्य राज्य अपनी दमनकारी सत्ता के द्वारा एक संस्थागत प्रयास के रूप में पूर्व प्रचलित प्रवृत्तियों को संगठित कर उन्हें एक निश्चित दिशा प्रदान की। यह कार्य एक विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र को नियंत्रित करते हुए एक पूर्ण केन्द्रीकृत एवं निरंकुश सत्ता के द्वारा ही संभव हो सकता था और भारतीय

इतिहास में यह अपने प्रकार का एक सर्वथा अभिनव प्रयोग था। यह उल्लेखनीय है कि अशोक के शिलालेखों का वितरण क्षेत्र जिसमें कर्नाटक व आंध्र प्रदेश के अभिलेख भी सम्मिलित हैं[24], मौर्य साम्राज्य के विस्तार का द्योतन करते हैं। इस प्रकार मौर्यों के विजयों को पूर्ववर्ती सांस्कृतिक विकास की भौतिक उपलब्धियों को संगठित करने की एक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। विजयों द्वारा एक ऐसे ताने–बाने को एकता के सूत्र में आबद्ध करने का प्रयास था जो आने वाली कई सदियों तक चलता रहा।[25] साम्राज्य का आविर्भाव तभी संभव हुआ जब नागर संस्कृति ने अपनी परिपक्वता का एक निश्चित स्तर प्राप्त कर लिया। बड़ी मात्रा में उत्पादन आधिक्य, इसके नियोजन एवं वाणिज्यीकरण के फलस्वरूप नगरीय केन्द्रों में जनसंख्या का एकत्रीकरण संभव हुआ। मौर्यकाल के पूर्व आवागमन के तीन मुख्य मार्ग थे– उत्तर से दक्षिण–पश्चिम मार्ग (श्रावस्ती से प्रतिष्ठान), उत्तर से दक्षिण–पूर्व मार्ग (श्रावस्ती से राजगृह) और पूरब से पश्चिम का मार्ग (गंगा व यमुना के साथ–साथ)।[26] व्यापारिक वर्ग को आवागमन की सुविधा देकर मौर्यों ने साम्राज्य को अतिरिक्त सामाजिक आधार प्रदान कर लाभ पहुँचाया।

लौह तकनीक की सहायता से मौर्य राज्य ने सांस्कृतिक एकता स्थापित करने की भूमिका का निर्वाह किया।[27] आवागमन एवं संचार के संसाधनों में सुधार[28] के साथ ही एक बड़ी सेना एवं विशाल नौकरशाही ने इस अपेक्षित आवश्यकता को संबलित किया। इस प्रक्रिया में एक ही प्रकार की लिपि ने अवश्य सहायता प्रदान की होगी।[29] इस संदर्भ में विचारधारा की भूमिका के महत्व पर भी ध्यान दिया जा सकता है।[30] संपूर्ण देश में फैले हुए अशोक के शिलालेखों में अंकित धम्मनीति के द्वारा विचारों के स्तर पर एकरूपता लाने के प्रयास का प्रदर्शन होता है। यह तत्कालीन समाज में प्रचलित धार्मिक वाद–विवाद को समान वैचारिक धरातल प्रदान करने का एक प्रयास था। प्रेरणा देकर समन्वित करने का यह एक ऐसा साधन निकाला गया जो मोटे तौर पर धम्म के नैतिक आदर्शों के अनुरूप था।[31] मौर्यों की सेना इतनी विशाल थी कि अशोक के राजनैतिक प्रणाली को वैधता प्रदान करने के लिए परम्परागत विचारधारा में जाने की बहुत बाध्यता नहीं थी। नवीन प्रकार की राजनीतिक सत्ता के आविर्भाव के साथ इसने असाम्राज्यवादी राजनीतिक मानकों को पुनर्परिभाषित करने का सुअवसर प्रदान किया। अशोक के धम्म को उसकी राजनीतिक प्रणाली की नयी आवश्यकताओं से सज्जित कर एक वैकल्पिक विचारधारा के रूप में देखने की आवश्यकता है। विशाल नौकरशाही के साथ एक पूर्ण केन्द्रीकृत राजनैतिक तंत्र जिसका विकसित लौह तकनीक पर एकाधिकार था, ने कृषिगत विकास की गति को तीव्रता प्रदान की। विस्तृत राजनैतिक तंत्र को कायम रखने के लिये नये संसाधनों की आवश्यकताओं ने नवीन बस्तियों की स्थापना तथा उजाड़ बस्तियों को पुनः बसाने को प्रेरित किया। कौटिल्य ने अकृषित भूमि को कृषि कार्य के अंतर्गत लाने की एक बड़ी ही निराली प्रणाली विकसित की थी। सीताध्यक्ष की देख रेख में राज्य के अपने कृषि क्षेत्र थे। राज्य द्वारा सिंचाई के निमित्त किये गये प्रयासों ने कृषिगत उन्नति को त्वरित किया। स्पष्टतया लौह तकनीक ने बड़ी सिंचाई योजनाओं को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य किया। मौर्यों द्वारा नियोजित ढंग से जंगलों के सफाई अभियान की पुष्टि पुरात्तव द्वारा भी होती है। एन. बी. पी. डब्ल्यू. से सम्बन्धित उत्खनित 74 पुरास्थलों में से 57 उत्तर एन. बी. पी. डब्ल्यू. संस्कृति से संबंधित हैं, जो नदियों से दूरस्थ हैं। इन पुरास्थलों से बड़ी संख्या में वयलकूपों का पाया जाना स्पष्ट करता है कि बसावट की समस्या बहुत नहीं थी। कृषिगत क्रिया–कलाप में इस आश्चर्यजनक वृद्धि का परिणाम कई प्रकार के कृषिगत करों में वृद्धि थी। कृषकों को कई प्रकार के अतिरिक्त करों का भार वहन करना पड़ता था यथा– आपात कर 'प्रणय' के अतिरिक्त पिण्डकारा, सेनाभक्त और सिंचाई कर। अशोक द्वारा पशु–वध न करने का बारम्बार आग्रह कृषि के प्रसार और उसकी सुरक्षा को राज्य द्वारा सुनिश्चित करना एक आवश्यक आवश्यकता थी।

गंगा घाटी और उसके वाह्य क्षेत्रों में कृषिकरण के फलस्वरूप अतिरिक्त उत्पादन के कारण कई नये नगर अस्तित्व में आये और पुराने नागर बस्तियों के व्यापारिक मार्गों को संबल मिला। पाटलिपुत्र का एक महानगर के रूप में परिवर्तन इस भौतिक समृद्धि की एक वास्तविका थी। मौर्यकालीन नगर राज्य नियंत्रित शिल्प एवं व्यापार के केन्द्र के रूप में कार्य करते थे।[41] परिणामस्वरूप वाणिज्य एवं व्यापार का संगठन आसान हो गया और शिल्पों ने लघु उद्योगों का रूप ग्रहण कर लिया।[42] उल्लेखनीय है कि तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में लंबी दूरी वाले वाणिज्य का व्यवस्थित ताना–बाना उन्हीं क्षेत्रों से जुड़ा था जो स्थायी बसावट वाले थे।[43] निःसंदेह लौह तकनीक पर आधारित ग्रामीण बस्तियाँ इसमें अपने तरीके से सहयोग प्रदान करती थीं तथा कभी–कभी तो मौर्य काल में वर्धमान नागर प्रकार की आर्थिक संरचना को दिशा देने का भी काम किया करती थीं।

गंगा घाटी की उन्नत भौतिक समृद्धि अपने परिधीय क्षेत्र में दूरगामी परिवर्तन आसन्न करने का साधन बनी। इस प्रक्रिया ने दो पकार से कार्य किया– लौह आधारित कृषि तकनीक का उन क्षेत्रों में प्रसार और इसे मुख्य धारा में सम्मिलित करते हुए भौतिक संस्कृति के स्थानीय तत्वों के संगठन में की सहायता। बांग्लादेश के जनपद बोगरा में स्थित महास्थान[44] और पश्चिम बंगाल में स्थित खानमिहिररढिबि[45] जहाँ से लौह उपकरण तथा तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में स्थायी आबादी के सुनिश्चित साक्ष्य मिले हैं, ने संबंधित क्षेत्रों में स्थाई कृषि के परिवर्तन के केन्द्र के रूप में कार्य किया होगा। इस परिवर्तन के नवीन तत्वों को ग्रहण करने में कलिंग जैसे क्षेत्र अधिक क्रियाशील प्रतीत होते हैं। यह क्षेत्र मगध के संपर्क में चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में आया, किन्तु परिवर्तन के चिन्ह तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में दृष्टिगत हुए जब यह अशोक के साम्राज्य का अंग बना और अशोक इस ओर ध्यान देने

लगा।[46] इसकी पुष्टि शिशुपालगढ़, जौगढ़, असुरगढ़, खरलियागढ़ और गडभेला के उत्खननों से प्राप्त प्रारंभिक औजारों से होती है। इस परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में लोहा तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में कृषि उपकरणों के रूप में स्पष्टतः प्रयोग में आने लगा था। कृषि कर्म में क्रांतिकारी परिवर्तन इस्पात या अर्द्ध इस्पात बनाने की जानकारी के विस्तार के कारण संभव हुआ, जो मौर्यों द्वारा प्रदान की गई सांस्कृतिक छतरी का परिणाम था। ध्यातव्य है कि उड़ीसा में आर्थिक समृद्धि उसकी समुद्रतटीय भौगोलिक स्थिति के कारण नहीं थी जैसा कि बहुधा कहा जाता है।[47] आर्थिक समृद्धि के मुख्य तत्व–लौह उपकरणों एवं सिक्कों–का एक वृहद क्षेत्र में प्रसरण से स्पष्ट है कि संपूर्ण उड़ीसा के क्षेत्र में लौह तकनीक का जोरदार स्वागत हुआ था। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि चेदि राज्य इस कृषि जगत में आये क्रांतिकारी परिवर्तन का उत्पाद था। इससे यह भी पता चलता है कि राजा ने किसानों के निमित्त सिंचाई संबंधी सुविधाओं की सुलभता की ओर ध्यान दिया था और इसके लिए प्रयास भी किया था। इन साक्ष्यों से यह प्रमाणित होता है कि लौह तकनीक का इस क्षेत्र में प्रवेश हो चुका था।

गंगा घाटी के इन सांस्कृतिक तत्वों का दक्कन क्षेत्र में प्रसरण के संबंध में लौह तकनीकी की भूमिका पर निश्चित तौर पर कुछ कहा नहीं जा सकता। इस क्षेत्र में लौह प्रयोग के साक्ष्य कर्नाटक के 'हल्लूर' नामक पुरास्थल के समकालीन हैं। किन्तु इतना तो निश्चित है कि कम से कम 300 ईसा पूर्व तक यहाँ नागर संस्कृति का विकास में नहीं हुआ था। इसका कारण इस क्षेत्र की अपनी सामाजिक संरचना का पूरी तरह अलग होना बताया जाता है।[48] इस संबंध में अभी और शोध की आवश्यकता है। यह सर्वविदित है कि इस क्षेत्र में लौह प्रयोग की बड़ी मजबूत परम्परा थी, किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि इस प्रकार का ऐतिहासिक परिवर्तन तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास तक नहीं हुआ था। अतः इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि मौर्य संपर्क के जरिये गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति के तत्व दक्कन में आये।

मैसूर में अशोक के अभिलेखों का संकेद्रण और आंध्र प्रदेश के अमरावती से प्राप्त अभिलेख इस क्षेत्र में मौर्य कालीन सांस्कृतिक तत्वों के इस क्षेत्र में प्रवेश संबंधी सबसे प्राचीन लिखित साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। यह ठीक है कि ब्रह्मगिरि[49] की खुदाई से जो अशोक दो अभिलेख मिले हैं, उनसे मौर्य कालीन भौतिक संस्कृति के तत्वों का रेखांकन नहीं होता किन्तु यहाँ के द्वितीय सांस्कृतिक काल से नवीन प्रकार के मृद्भाण्ड और लौह उपकरणों का पहली बार मिलना महत्वपूर्ण है जो मौर्यकाल के समकालीन हैं। इस प्रकार के मृद्भाण्ड कर्म के साक्ष्य शिशुपालगढ़[50] (उड़ीसा), केसरपल्ली[51] (आंध्र प्रदेश), कोरकल[52] (तमिलनाडु) से भी मिले हैं। मौर्य संस्कृति के इन तत्वों का इन चारों पुरास्थलों पर समान रूप से पाया जाना ध्यान देने योग्य है। अमरावती से प्राप्त साक्ष्य असंदिग्ध हैं।[53] इस बौद्ध केन्द्र से लगभग एक किमी की दूरी पर स्थित धरणीकोट नामक नगरीय पुरास्थल है। यह निश्चित है कि मौर्यों के संपर्क में आने पर निम्न कृष्णा घाटी में अमरावती व धरणीकोट[54] एक प्रभावी धार्मिक व व्यापारिक परिक्षेत्र के रूप में उदीयमान हो रहा था। नागर संस्कृति की ओर अग्रसर इस परिवर्तन को तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में मौर्य साम्राज्य को संगठित करने की भूमिका तथा इस क्षेत्र में लौह तकनीक के बलात् प्रवेश के संदर्भ में समझा जा सकता है। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि अमरावती इस क्षेत्र में भौतिक संस्कृति के प्रसरण के स्थानीय केन्द्र के रूप में विकसित हुआ था।[55] इस क्षेत्र में राज्य की प्रशासनिक संरचना जिसका प्रकटीकरण सातवाहनों के राजधर्म दिखाई पड़ता है, गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति के नवीन तत्वों के आगमन से प्रभावित प्रतीत होता है। नये शासकों ने अपने शासन की वैधता के प्रयास के क्रम में मौर्य प्रशासन व संस्कृति के कुछ प्रभावी तत्वों का उपयोग किया।

गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति के बाह्य क्षेत्रों में विस्तार की प्रक्रिया में बौद्ध धर्म द्वारा भी सहायता मिली। यह उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम बौद्ध मठों का आविर्भाव तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में हुआ।[56] उनके प्रसरण का मूल क्षेत्र गंगा–यमुना घाटी थी। मध्य भारत के भरहुत व सांची तथा दक्षिण में अमरावती को अपवाद के रूप में देखा व समझा जा सकता है। आरंभिक बौद्ध केन्द्र इन मठ–स्थलों के समीप हैं अथवा नगरीय स्थलों को जोड़ने वाले मार्गों पर स्थित हैं या एन. बी. पी. डब्ल्यू. व अशोक के अभिलेखों के वितरण क्षेत्र में स्थित हैं। इस प्रकार अपने विकास के प्रथम चरण में बौद्ध मठ राजनीतिक व आर्थिक संगठन के मुख्य स्वरूपों से जुड़े हुए थे जैसा कि उस समय विकसित हो रहा था। बौद्ध धर्म ने गंगा घाटी की भौतिक संस्कृति को बाह्य क्षेत्रों में फैलाने के प्रयास में मौर्य साम्राज्य के हाथों को मजबूत करता प्रतीत होता है। द्वितीय शताब्दी ईस्वी में एक अखिल भारतीय आर्थिक ढाँचा का उदय इस प्रयास की सार्थकता को प्रमाणित करता है।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मौर्ययुगीन भारत में लौह तकनीक ने उत्पादन की विधा में केन्द्रीय स्थान ग्रहण कर लिया था। इसकी प्रौद्योगिकी में निरन्तर परिष्कार एवं एक विस्तृत भू–भाग में प्रसार ने वृहद पैमाने पर स्थायी बस्तियों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। यह सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में आर्थिक एकता की प्रस्तावना थी। मौर्यों ने समाज में सक्रिय पूर्व प्रवृत्तियों को स्वरूप देने, मानकानुकूल बनाने और इनके प्रसरण के अनुक्रम में एक निश्चित भूमिका का निर्वाह किया। लौह तकनीक जिसने मौर्य साम्राज्य की प्रकृति का निर्माण कर उसे एक वृहद आकार तथा ठोस आर्थिक आधार प्रदान किया, यह बिडम्बना ही है कि अपने वृहद प्रसरण, उन्नत तकनीक के कारण अशोक के बाद नये राज्यों के आविर्भाव के साथ इसके विघटन को गति देने का काम इस तकनीक ने ही किया।

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-III, ISSUE-III, February-2015
E: ISSN No. 2349-9435
Periodic Research

सन्दर्भ सूची

1. तिवारी, राकेश, 2003, द ओरिजीन ऑफ आयरन वर्किंग इन इण्डिया : न्यू एविडेन्स फ्राम द सेण्ट्रल गंगा प्लेन एण्ड द इस्टर्न विन्ध्याज, *एण्टीक्वीटी–* 77, 297; पृ0 536–544; तिवारी, आर., आर. के. श्रीवास्तव एवं के.के. सिह, 2002 ए, एक्सकेवेशन्स एट लहुरादेवा डिस्ट्रिक्ट संत कबीर नगर, उत्तर प्रदेश, *पुरातत्व,* नं0 32, पृ0 54–62; तिवारी, आर. एवं अन्य, 2002, दादूपुर एक्सकेवेशन्स 1999–2000, डिस्ट्रिक्ट लखनऊ, उत्तर प्रदेश : ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट, *प्राग्धारा,* अंक– 12 पृ0 99–116; तिवारी आर. एवं अन्य, 2000, एक्सकेवेशन्स एट मलहर, डिस्ट्रिक्ट चन्दौली (यू0पी0) 1999: ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट, *प्राग्धारा,* अंक– 10, पृ0 69–98; तिवारी. आर. एवं आर.के.श्रीवास्तव, 1998 एक्सकेवेशन्स एट राजा नल का *टीला* (1996–97), डिस्ट्रिक्ट सोनभ्रद (यू0पी0) प्रीलिमिनरी आब्जर्वेशन्स, *प्राग्धारा,* अंक–8, पृ. 99–108
2. त्रिपाठी, वी., 2001, *द एज ऑफ आयरन इन साउथ एशिया : ट्रेडीशन एण्ड लीगेसी,* आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, न्यू देहली; त्रिपाठी, वी., 2005–06 आयरन टेक्नोलाजी, इट्स इम्पैक्ट एण्ड सर्ववाइवल इन द मिडिल गंगा प्लेन, *प्राग्धारा,* अंक– 16 : पृ0 109–123
3. वही, त्रिपाठी, वी., 2008, *हिस्ट्री ऑफ आयरन टेक्नोलोजी इन एंशियण्ट इण्डिया* : फ्रॉम बिग्निंग्स टू प्री मार्डन टाइम्स, रूपा एण्ड कंपनी, न्यू देहली।
4. ठाकुर, वी0के0, 1993, सोशल डाइमेंशन ऑफटेक्नोलोजी, *आयरन इन अर्ली इण्डिया,* पटना, पृ0 5–32
5. राय, टी0एन0, 1986, *ए स्टडी ऑफ नार्दन ब्लैक पालिश्ड वेयर कल्चर* : एन आयरन एज कल्चर ऑफ इण्डिया, वाराणसी, पृ0 193
6. लाल, बी0बी0, 1950–52, एक्सकेवेशन्स एट हस्तिनापुर एण्ड अदर एक्सप्लोरेशन्स इन द अपर गंगा एण्ड सतलज बेसिन्स, *एंशियण्ट इण्डिया,* नं0 10–11, पृ0 97–99
7. सिन्हा, के0के0, 1967, *एक्सकेवेशन्स एट श्रावस्ती, 1959,* बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी, पृ0 67–68
8. शर्मा, जी0आर0, 1960, ए*क्सकेवेशन्स एट कौशाम्बी, 1957–59,* इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, पृ0 45'48
9. वही, पृ0 55–56
10. राय, टी. एन., 1986, वही, पृ0 142
11. वही,
12. मार्शल, जे0एच0, 1951, *तक्षशिला,* कैम्ब्रिज, वाल्यूम–1 : पृ0 104, 107; वाल्यूम : पृ0 63 और आगे।
13. राय, टी0एन0, 1986, वही, पृ0 14
14. नागराज, एस0 एण्ड गुरूराज राव, बी0के0, 1979, क्रोनोलोजी ऑफ आयरन इन साउथ इण्डिया, *एसेज इन इण्डियन प्रोटोहिस्ट्री,* संपा. डी0 पी0 अग्रवाल एण्ड डी0के0 चक्रवर्ती, बी. आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन,देलहीः पृ0 321–29
15. *इण्डियन आर्कियालोजी : ए रिव्यू* : 1973–74, पृ0 4, कर्नाटक व आंध्र प्रदेश से अशोक के 18 अभिलेख प्राप्त हुए हैं।
16. अर्थशस्त्र, ।।,12,
17. मुरे, *जर्नल ऑफ द रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल,* तृतीय सीरीज, वाल्यूम ट्प : पृ0 101, उद्धृत शर्मा, आर0एस0, 1983, *पर्सपेक्टिव्स इन सोशल एण्ड इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इण्डिया,* मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, न्यू देहली : पृ0 131
18. वही
19. *इण्डियन आर्कियालोजी : ए रिव्यू,* 1964–65, पृ0 6
20. वही,
21. अर्थशास्त्र, ।। ,2.
22. हेगड़े, के0टी0एम0, 1973, अर्ली स्टेज ऑफ मेटलर्जी इन इण्डिया, *रेडियो कार्बन एण्ड इण्डियन आर्कियालोजी,* संपा. डी0पी0 अग्रवाल एण्ड ए0 घोष, टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ फंडामेण्टल रिसर्च, बाम्बे, पृ0 401–405
23. बनर्जी, एन0आर0, 1965, *द आयरन एज इन इण्डिया,* मुंशी राम *मनोहर लाल,* देलही, पृ0 179.
24. थापर, रोमिला, 1966, *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* बाल्यूम 1, पेंगुइन बुक्स, पृ0 81
25. हीत्जमन, जे, 1984, अर्ली बुद्धिज्य, ट्रेड एण्ड एम्पायर, *स्टडीज इन द आर्कियालोजी एण्ड पैलियोन्थ्रोपोलोजी ऑफ साउथ एशिया,* संपा. के0ए0 आर0 कनेडी एण्ड पॉसेल जी0एल0, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई. बी. एच.न्यू देलही, पृ0 124
26. डेविड्स, रीज, टी0 डब्ल्यू0 1903, *बुद्धिस्ट इण्डिया,* लंदन, पृ0 103 और आगे।
27. ठाकुर, वी0के0, 2001, आयरन टेक्नोलोजी एण्ड सोसल चेंजेज इन अर्ली इण्डिया, *मेटलर्जी इन इण्डियाः ए रेट्रोस्पेक्टिव,* संपा0 पी0 राम चन्द्र राव एण्ड एन0जी0 गोस्वामी, इण्डिया इंटरनेशनल पब्लिशर्स, न्यू देहली पृ0 134–142
28. अशोक अपने अभिलेखों में वृहद पैमाने पर निर्मित सड़कों के होने का दावा करता है।
29. राज्य संरचना की प्रक्रिया में भाषा एवं लिपि की भूमिका के लिए द्रष्टव्य– पीटर, स्कैलनिक, 1978, द अर्ली स्टेट एज ए प्रासेस, *द अर्ली स्टेट* द हैग, संपा0 क्लेसेन एच0जे0एम0 एण्ड पीटर स्कैलनिक, पृ0 607, ब्राहमी लिपि का वृहद क्षेत्र में प्रसरण मौर्यों के काल में हुआ।
30. वही, पृ0 628,629
31. थापर, रोमिला, 1987, *द मोर्याज रिविजिटेड,* सेण्टर फॉर स्टडीज इन सोशल सांइसेज, के0पी0 बागची एण्ड कम्पनी,कलकत्ता, पृ0 22
32. अर्थशास्त्र, ।।, 9
33. वही, ।।,24

34. राय, टी0एन0, वही, पृ0 89–91
35. वही, पृ0 37 और आगे
36. अर्थशास्त्र, अए4
37. शर्मा, आर0एस0, वही, पृ0 131
38. वही,
39. अर्थशास्त्र, ।।0020,9
40. चौदह शिलालेखों में से सात (I,II,III,V,VIII, IX एवं X) में पशु–वध निषेध का आग्रह अशोक द्वारा किया गया है। कौटिल्य भी इसी प्रकार का आग्रह करता है– अर्थशास्त्र ।।,26.
41. शर्मा, आर0एस0, वही, पृ0 130–31
42. थापर, रोमिला, 1973, *अशोक एण्ड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्याज,* द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, देलही, पृ0 72
43. पकी ईंटों का प्रयोग इस काल में नागर परम्परा के विकास का द्योतन करता है। राय, टी0एन0, वही, पृ0 184
44. मुखर्जी, आर0 आर0 एण्ड मैत्ती, एस0 के0, 1967, *कार्पस ऑफ बंगाल इंसक्रिप्शन्स बियरिंग ऑफ हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ बंगाल,* के.एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता, पृ0 38–39
45. *इण्डियन आर्कियालोजी : र रिव्यू,* 1956–57, पृ0 29 और आगे; 1957–58, पृ0 51 और आगे, 1962–63, पृ0 46; 1963–64, पृ0 63 और आगे; 1964–65, पृ0 52 और आगे; 1966–67, पृ0 48
46. साहू, बी0पी0 1981, द आर्कियालोजी ऑफ अर्ली हिस्टारिक उड़ीसा, *प्रोसीडिंग्स आफ द उड़ीसा हिस्ट्री कांग्रेस,* 9वाँ सेशन, राऊरकेला, पृ0 2
47. द्रष्टव्य, महताब, एच.के.एम. 1949, *प्रेसिडेंशियल एड्रेस* (लोकल हिस्ट्री कांग्रेस) पी. आई. एच. सी. 12 वाँ, सेशन, कटक, पृ0 278
48. पराशर, आलोक, 1991, सोशल स्ट्रक्चर एण्ड इकोनॉमी ऑफ सेटल मेण्ट्स इन द सेण्ट्रल डेक्कन (200 बी0सी0–ए0डी0 200), *द सिटी इन इण्डियन हिस्ट्री,* संपा0 इन्दुबंगा, मनोहर पब्लिशर्स, न्यू देलही, पृ0 22–23
49. हीलर, आर0ई0एम0, 1947, ब्रह्मगिरि एण्ड चन्द्रावल्ली; मेगालिथिक एण्ड अपर कल्चर्स इन चितलदुर्ग डिस्ट्रिक्ट, मैसूर स्टेट, *एंशियंट इण्डिया* नं0 4, पृ0 181 और आगे
50. लाल, बी0बी0, 1948, शिशुपालगढ़ : एन अर्ली हिस्टॉरिकल फोर्ट इन ईस्टर्न इण्डिया, *एंशियण्ट इंडिया,* न0 5, पृ0 79
51. सरकार, एच, 1962, केसरपल्ली, *एंशियण्ट इंडिया* नं0 22, पृ0 45
52. चम्पकलक्ष्मी, आर0,1975–76 आर्कियालोजी एण्ड तमिल लिटरेरी ट्रेडीशन, पुरातत्व, नं0 8, पृ0 114
53. अलेक्जेण्डर, री, 1912, एक्सकेवेशन्स एट अमरावती, *आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया : एनुअल रिपोर्ट, 1908–09,* पृ0 88–89
54. *इण्डियन आर्कियालोजी : ए रिव्यू,* 1963–64, पृ0 2–4, 1964–65, पृ0 2–3
55. बेग्ले वी0, 1988, फ्रॉम आयरन एज टू अर्ली हिस्टॉरिकल इन साउथ इण्डियन आर्कियालोजी, संपा0 जे0 जैकबसन, *स्टडीज इन द आर्कियालोजी ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान,* अमेरिकन इंस्ट्रीच्यूट ऑफ इण्डियन स्टट्रीज, न्यू देलही, पृ0 304–05
56. हीत्समन, जे0, पूर्वोक्त, पृ0 125